Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
VOL- IX ISSUE- IV APRIL 2022 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.331 ISSN 2349-638x

वैश्वीकरण एवं गांधी के सपनों की हिंदी

ऋचा श्री
शोधार्थी, टांटिया यूनिवर्सिटी,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

बैठकर खादी की गादी पर ढलती हैं प्यालियां, भाषण होते हैं, अंग्रेजी में गांधी पर बजती हैं जोर-जोर से तालियां कविवर भवानी प्रसाद मिश्र की उक्त पंक्तियां आधुनिक वैश्वीकरण के दौर में चहुंओर अंग्रेजी के वर्चस्व को देखकर, गांधी जी के सपनों की हिंदी के बारे में सटीक अभिव्यक्ति है। असल में गांधी जी के लिए भाषा का प्रश्न राष्ट्र के भविष्य और समाज के उद्देश्य से पृथक नहीं था। गांधी जी ने सन् 1909 में ही यह बात कही थी, "अगर स्वराज्य मुठीभर शिक्षकों का है तो संपर्क की भाषा अंग्रेजी होगी लेकिन यदि वह करोड़ों भूखे लोगों, करोड़ों निरक्षर लोगों, निरक्षर स्त्रियों, सताए हुए अछूतों के लिए है तो संपर्क भाषा केवल हिंदी ही हो सकती है।"

दूसरे शब्दों में गांधी इन भूखे, निरक्षर, सताए हुए लोगों के हित और अधिकार को लेकर संघर्ष कर रहे थे, इसीलिए उन्होंने इन लोगों की अपनी भाषा को संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में परिभाषित किया। वे साक्षात यह देख रहे थे कि अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित नया संभ्रांत वर्ग हिंदी और भारतीय भाषाओं के बदले अंग्रेजी का पक्षधर बनता जा रहा था। यह बात उन्हें तकलीफ देती थी। अत: उन्होंने राष्ट्रभाषा पर विचार करते हुए कठोरता के साथ कहा था, "जो लोग अपनी भाषा छोड़ देते हैं वे देशद्रोही हैं और जनता के प्रति विश्वासघात करते हैं।"

यह बात ध्यान देने की है कि गांधी जी जनता के प्रति विश्वासघात को देशद्रोह की श्रेणी में रखते थे। उनके लिए देश का अर्थ केवल भूमि और सीमा नहीं थी बल्कि उस भूमि और सीमा में रहते रहने वाली जीती-जागती श्रमजीवी जनता थी। हिंदी के बारे में गांधी जी के दर्शन की अभिव्यकित, गांधी दर्शन और चिंतन के अध्येता राकेश पाण्डेय ने की है, जिनका मानना है कि गांधी की हिंदी, देशभक्ति के चरखे पर काती गई वह जनभाषा है जिसने सद्भाव के धागे से देश की आजादी का लिबास बुना और जो स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उपनिवेशवादी अंधेरे में भारतीय जनमानस को रास्ता दिखाने का एक कारगर जरिया बनी।

आज वैश्वीकरण के बाजारवादी दौर में गांधी जी की चिंता और आलोचना हमारे लिए अत्यंत प्रासंगिक और प्रेरणादायी बन गई है । हम सभी जानते हैं कि इस बाजारीकरण के इस दौर में अंग्रेजीभाषी राष्ट्रों और संस्थाओं का वर्चस्व कायम हो रहा है । उस बाजार से लाभ उठाने वाला मध्यम वर्ग अपनी भाषा छोडक़र अंग्रेजी की तरफ लपक रहा है । गांव-गांव में शिक्षा फैलाने वाले तथाकथित इंग्लिश मीडियम स्कूल खुल गए हैं जिनमें अंग्रेजी पढ़ाने वाले अध्यापक, अध्यापिकाएं संभवत: चार शुद्ध अंग्रेजी वाक्य बोल, लिख और समझ नहीं सकते लेकिन बाजार का आकर्षण इन स्कूलों की तरफ आबादी को खींच रहा है। वातावरण ऐसा चिंताजनक है कि 1835 में जो सपना लॉर्ड मैकाले ने देखा था वह 100 साल बाद तक ब्रिटिश राज के रहते हुए उस तरह पूरा नहीं हुआ था जिस तरह 1990 के बाद बाजारवादी वैश्वीकरण के दौर में संभव हो रहा है। यहां 02 फरवरी, 1835 को ब्रिटिश संसद में

प्रस्तुत लार्ड मैकाले के प्रस्ताव का एक अंश उद्धृत करना समीचीन है जिसमें वे कहते हैं, ''मैंने संपूर्ण भारत का दौरा किया और मैंने एक भी आदमी ऐसा नहीं देखा जो चोर हो, जो भिखारी हो। इस देश में मैंने ऐसी दौलत देखी, ऐसे उच्च नैतिक मूल्य और ऐसे योग्य लोग देखे कि मैं नहीं मानता कि हम कभी इस देश से जीत पाएंगे, जब तक कि हम इस देश की रीढ़ ही न तोड़ दें, जो उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत में निहित है और इसलिए मैं प्रस्ताव करता हूं कि हम उसकी पुरानी और प्राचीन शिक्षा पद्धति, उसकी संस्कृति को बदल दें ताकि भारतवासी यह सोचने लगें कि जो कुछ विदेशी और अंग्रेजी है, वह अच्छा है और उनकी अपनी चीज से महान है, वे अपना स्वाभिमान, अपनी स्थानीय संस्कृति खो देंगे और वे वैसे बन जाएंगे जैसा हम चाहते हैं...एक वास्तविक पराधीन राष्ट्र।'' मैकाले का सपना आज पूरा हो रहा है। गांधी जी के रहते उसका यह सपना पूरा नहीं हो सकता था। मैकाले के लिए भाषा का प्रश्न साम्राज्य के प्रभुत्व से जुड़ा था और गांधी जी के लिए भाषा का प्रश्न जनसाधारण के स्वराज्य से जुड़ा था।

गांधी जी ने अपने अहिंसक आंदोलनों के जरिए साम्राज्यवाद को हर स्तर पर चुनौती दी थी, राजनैतिक स्तर पर, आर्थिक स्तर पर और सांस्कृतिक स्तर पर। उनके लिए स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा परस्पर जुड़े हुए थे, इसीलिए गांधी एक विराट राष्ट्रीय विकल्प और स्वप्न प्रस्तुत कर सके और वे विश्व के सबसे बड़े आंदोलन के प्रणेता और अगुवा बने। आज गांधी जी का नाम लेते हुए भी हम उनके इन आदर्शों को व्यवहार में भुला चुके हैं। इसीलिए विदेशी पूंजी, विदेशी संस्कृति और भाषा हम पर हावी होते जा रहे हैं। दूरदर्शी और युगदृष्टा गांधी जी में यह सब देख पाने की क्षमता थी। इसीलिए उन्होंने 05 जुलाई,1928 को 'यंग इंडिया' में लिखा था, ''यदि मैं तानाशाह होता तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा दिया जाना बंद कर देता। सारे अध्यापकों को देसी भाषा अपनाने को मजबूर कर देता, जो आनाकानी करते उन्हें बर्खास्त कर देता। मैं पाठ्यपुस्तकों को तैयार किए जाने का इंतजार नहीं करता।'' लोकतंत्र के घोर समर्थक गांधी जी केवल शिक्षा और भाषा के प्रश्न पर तानाशाह बनने की कामना करते हैं।

गांधी जी का मानना था कि राष्ट्रभाषा के बिना हमारा स्वराज निरर्थक है। स्वराज की शुरुआत स्वभाषा से होनी चाहिए। इसलिए गांधी जी ने यह भी कहा था कि बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा में बोल ही नहीं सकूं और दूसरे आदमी को मेरे लिए तर्जुमा करना पड़े, यह कुछ कम दंभ नहीं है। यह गुलामी की हद नहीं तो क्या है? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी बोलने वाले लोग ही हैं। अंग्रेजी बोलना और गौरव करना अप्रतिष्ठा और शर्म की बात है। अंग्रेजी बोलना मुझे पाप लगता है। इसीलिए गांधीजी मानते थे कि अदालत का काम हिंदी में चलना चाहिए क्योंकि वह लोकभाषा और राष्ट्रभाषा है। हर प्रांत की अदालतों का काम उसी प्रांत की भाषा में होना चाहिए। अपील की अंतिम या सर्वोच्च अदालत की जबान हिंदुस्तानी करार दी जाए और लिपि देवनागरी हो। लेकिन दुख की बात यह है कि आज महात्मा गांधी का नाम लेकर चहुंओर अंग्रेजी को ही बढ़ावा दिया जा रहा है।

हिंदी को गांधी जी का वरदहस्त क्यों मिला? इसका एक शब्दचित्र , अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, इन्दौर के सभापति के रूप में उनके द्वारा दिए गए भाषण के अंशों से मिलता है, जहां वे कहते हैं कि साहित्य का प्रदेश, भाषा की भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर भारत प्रांत होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। हिंदी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक, वैसी ही भाषा। भाषा-सागर में स्नान करने के लिए पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण से पुनीत महात्मा आएंगे, तो सागर का महत्व स्नान कराने वालों के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए साहित्य की दृष्टि से भी हिंदी का स्थान विचारणीय है। भाषा के प्रश्न

पर गांधी जी ने कहा कि भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहज में समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषा का मूल करोड़ों मनुष्यरूपी हिमालय से मिलेगा और उसमें ही रहेगा। हिमालय में से निकलती हुई गंगा अनंत काल तक बहती रहेगी, ऐसे ही देहाती हिंदी का गौरव रहेगा और जैसे छोटी सी पहाड़ी से निकलता झरना सूख जाता है वैसे ही संस्कृतमयी तथा फारसीमयी हिंदी की दशा होगी। देश के जनमानस से जुड़े और देश की जनता की भावनाओं को बखूबी समझने वाले गांधी जी ने अंग्रेजी भाषा के प्रश्न पर कहा कि अंग्रेजी भाषा राष्ट्रीय भाषा क्यों नहीं हो सकती, अंग्रेजी भाषा का बोझा प्रजा के ऊपर रखने से क्या हानि होती है, हमारी शिक्षा का माध्यम आज तक अंग्रेजी होने से प्रजा कैसी कुचल दी गई है, हमारी जातीय भाषा क्यों कंगाल हो रही है, इन सब बातों पर मैं अपनी राय भागलपुर और भडौंच के व्याख्यानों में दे चुका हूं। इसलिए मैं यहां फिर से नहीं देना चाहता। इन दोनों व्याख्यानों में से भाषा-संबंध का भाग मैं इस व्याख्यान के परिशिष्ट में रख दूंगा। हकीकत में इस बात में संदेह नहीं हो सकता है।

हमारे कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर, विदुषी ऐनी बेसेंट, लोकमान्य तिलक और अन्यान्य प्रतिष्ठित और आप्त व्यक्तियों का मंतव्य इस विषय में ऐसा ही है। कार्य सिद्धि में कठिनाइयां तो होंगी किंतु उसका उपाय करना इस सभा पर निर्भर करता है। कहना आवश्यक नहीं है कि मैं अंग्रेजी भाषा से द्वेष नहीं करता हूं। अंग्रेजी साहित्य-भंडार से मैंने भी बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषा की मार्फत हमको विज्ञान इत्यादि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजी का ज्ञान कितने ही भारतवासियों के लिए आवश्यक है। लेकिन इस भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है, इसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है। इसी प्रकार हिंदी प्रदेशों में हिंदी की उपेक्षा से भी गांधी जी को पीड़ा होती थी। वो बोलते थे, "मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रांतों की मातृभाषा हिंदी है वहां भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह दिखाई नहीं देता है। उन प्रांतों में हमारे शिक्षित वर्ग आपस में पत्र-व्यवहार और बातचीत अंग्रेजी में करते हैं। एक भाई लिखते हैं कि हमारे अखबार चलाने वाले अपना व्यवहार अंग्रेजी की मार्फत करते हैं। अपने हिसाब-किताब वे सब अंग्रेजी में ही रखते हैं। बात छोटी है, लेकिन उसमें रहस्य बहुत है। फ्रांस में रहने वाले अंग्रेज अपना सारा व्यवहार अंग्रेजी में ही रखते हैं। हम अपने देश में अपने महत कार्य विदेशी भाषा में करते हैं। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम (हिंदी) भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज की सब बातें निरर्थक हैं। इस सम्मेलन द्वारा भारत वर्ष के इस प्रश्न का निराकरण हो जाए, ऐसी मेरी आशा है और प्रभु के प्रति प्रार्थना है। गांधी जी भारतीय भाषाओं में शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कहा था, "मैं अपने देश के बच्चों के लिए यह जरूरी नहीं समझता कि वह अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर पर ढोएं और अपनी उठती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें। आज जिस अस्वाभाविक परिस्थिति में रहकर हमें अपनी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। उस परिस्थिति का निर्माण करने वालों को मैं जरूर गुनहगार मानता हूं। दुनिया में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश का जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि हम खुद उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं। मैं उसकी भयंकरता का अंदाजा लगा सकता हूं क्योंकि मैं निरंतर देश के करोड़ों मूक, दलित और पीडित लोगों के संपर्क में आता रहता हूं।"

यहां पद्मभूषण न्यायमूर्ति चंद्रशेखर धर्माधिकारी के विचारों को उद्धृत करना समीचीन होगा जो कहते हैं कि हिंदी ने ही आजादी के आंदोलन में लोगों को जोड़ा था। गुलामी के दौर में मजदूर-आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलनों की भाषा हिंदी ही थी, यह पूरे भारत की भाषा थी। अब वह विशिष्ट समाज की भाषा बन कर रह गई है। शुद्धीकरण के नाम पर, संस्कृतनिष्ठ बनने के कारण

यह उच्च वर्ण और उच्च वर्ग की भाषा बन रही है। संस्कृत शब्दों पर अधिक जोर दिया जा रहा है। वह सामान्यजन की लोकभाषा के बदले विद्वतजनों की भाषा बन रही है। ऐसी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। राष्ट्रभाषा बहुसंख्या की भाषा नहीं, वह समूचे राष्ट्र की संपर्क भाषा होती है, तभी राष्ट्रभाषा बनती है। हिंदी समाज से मेरा अनुरोध है कि वह इसे ऐसी भाषा बनी रहने दें जो सभी के साथ संवाद कर सके। हिंदी किसी भी विशिष्ट प्रदेश में बंधी भाषा नहीं है। वह अखिल भारतीय तथा अंतरप्रांतीय भावना का प्रतिनिधित्व करती है। यह उसका दायित्व भी है और विशेषता भी। क्योंकि हिंदी सिर्फ भाषा नहीं बहता नीर है। वह तो भारत की अस्मिता की प्रतीक है, और 'राष्ट्रभाषा' बनने की क्षमता उसी में है। धर्माधिकारी जी ने सही कहा कि केवल अंग्रेजों के साम्राज्य से मुक्ति, यह आजादी के आंदोलन का संपूर्ण आशय नहीं था। सभी प्रकार की दासता से मुक्ति, नया आजाद इंसान निर्माण करना, उसकी हर प्रकार की गुलामी को नष्ट करना, यह आजादी के आंदोलन का निहित लक्ष्य था। जनतंत्र कामयाब होने के लिए, जनता की भाषा में, लोक भाषा में लोकतंत्र की न्याय-व्यवस्था कार्य करे, यह आवश्यक है। वरना सिर्फ 'तंत्र' रह जाएगा और 'लोक' गायब हो जाएंगे, खो जाएंगे। उनका व्यवहार में कोई सहभाग या हिस्सा हो ही नहीं सकता। गुणात्मक लोकतंत्र प्रस्थापित होकर वह प्राणवान बनने के लिए सामान्यजन की अभिव्यक्ति के लिए उसको पर्याप्त स्थान मिलना जरूरी है। इसके बिना कानून का राज्य स्थापित नहीं हो सकता। राज्य व्यक्ति का, या व्यक्तियों के समूह का न होकर कानून का हो, अगर यह अपेक्षा होगी तो सामान्य जन का सकारात्मक और भावनात्मक सहयोग न्यायालयीन व्यवहार में होना चाहिए। लोक भाषा के प्रयोग की योजना अधूरी या असंगत नहीं होनी चाहिए सभी स्तरों पर लोक भाषा का प्रयोग करना होगा। इस संदर्भ में जो गुणवत्ता बिगड़ जाने की दलील दी जाती है, वह स्वार्थमूलक है। इस देश में उच्चवर्गीय और प्रस्थापित लोगों को गुणवत्ता की बहुत फिक्र है। सौ आदमियों के लिए जो भोजन बनता है, उसकी गुणवत्ता 10 आदमियों के लिए जो खास खाना बनता है, उससे निकृष्ट या घटिया हो होती है, इसलिए 90 फीसदी लोगों को भूखा-नंगा रखकर सिर्फ 10 फीसदी लोगों को ही खुशहाल, अमीर और उच्चवर्गीय प्रस्थापित रखने की योजना अमानवीय ही मानी जानी चाहिए। जब-जब सामान्यजनों के भाग लेने का, सम्मिलित होने का, साझीदार होने का सवाल उठता है, तब हमेशा यह प्रस्थापित वर्ग, योग्यता, अर्हता और गुणवत्ता का सवाल उठाता है ताकि उनके संस्थापित, प्रतिष्ठित, प्रस्थापित निहित स्वार्थ सुरक्षित रह सकें। ऐसा ही कुछ लोकतंत्र की शासन व्यवस्था और न्याय व्यवस्था में लोकभाषा के प्रयोग के बारे में हो रहा है। इस क्षेत्र में लोकभाषा का प्रयोग मेरी दृष्टि से सामान्यजन के लिए जीवन और मरण का सवाल है। पहले शब्दावली बने, फिर शिक्षा लोक भाषा में दी जाए और यह सब होने के बाद शासकीय या न्यायालयीन व्यवहार की भाषा लोकभाषा बने, ऐसा करना या मानना यानी तैरना सीखे बिना पानी में न उतरने जैसी बात होगी। इन सारी मंजिलों या मुकामों पर एक साथ काम शुरू करना होगा जो गांधी जी चाहते थे।

अब प्रश्न है कि आज वैश्वीकरण के दौर में गांधी जी के चले जाने के बाद उनके सपनों की हिंदी किस हाल में है? सबसे पहले तो समझते हैं कि वैश्वीकरण है क्या और इससे भाषा कैसे प्रभावित होती है। यह एक ऐसी प्रकिया है जिसके अंतर्गत भौगोलिक दूरियां, सीमाओं, सरहदों, दीवारों के बावजूद दुनिया के देश तकनीक के माध्यम से विचारों, उत्पादों और संस्कृति के अन्य पहलुओं के आदान-प्रदान से एक दूसरे के करीब आ जाते हैं, शुद्ध तौर पर आर्थिक एकीकरण। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक नोम चॉमस्की के शब्दों में वैश्वीकरण का अर्थ अंतरराष्ट्रीय एकीकरण है। वस्तुत: यह संपूर्ण विश्व को एक गांव में बदलने की अवधारणा है। इस एकीकरण में भाषा की अहम

भूमिका होती है। जो भाषा व्यापक रूप से प्रयोग में रहेगी उसी का स्थान विश्व में सुनिश्चित होगा। जब विश्व एक बड़ा बाजार बन जाएगा और उस बाजार में प्रयोग करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग होगा वही जीवित रह पाएगी। जैसे दो विभिन्न भाषाई प्रांतों के पड़ोसी परिवारों में मेल-जोल बढऩे से वे एक दूसरे की भाषा सीख लेते हैं, त्योहार और धर्म के बारे में जानने लगते हैं, खान-पान और पहनावे की पसंद-नापसंद समझने लगते हैं। ठीक वैसे ही देशों के बीच नजदीकियां और मेल-जोल बढऩे की वजह से देशों की संस्कृतियों के बारे में जानने लगते हैं जिसमें भाषा प्रमुख है। अन्य भाषाओं के मुकाबले हिंदी ने इस मौके को बखूबी भुनाया है। कहीं बाजार की मजबूरियों ने तो कहीं हिंदी के प्रति रूझान और प्रेम ने हिंदी की व्यापकता को बढाने का काम किया है। आज हिंदी की सरल प्रकृति और दूसरी भाषा के शब्दों को ग्रहण करने व स्वीकार करने की इसकी क्षमता ने इसे अन्य भाषाओं के मुकाबले विश्व में अधिक प्रचलित कर दिया है। पूरी दुनिया में आधुनिक वैश्वीकरण की अनुगूंज बीसवीं शताब्दी के आखिरी दशक में सुनाई पडऩे लगी थी। क्या हम तीस-चालीस साल पहले वैश्वीकरण से वाकिफ नहीं थे? निश्चित रूप से यह शब्द नया हो सकता है, किन्तु इसकी अवधारणा सदियों पुरानी है। सिंधु घाटी की सभ्यता, चीन, मिश्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताओं में व्याप्त व्यापारिक अंतर्संबंध इस संकल्पना की पुष्टि करते हैं। लगभग दो सहस्राब्दी से भी पहले मध्य एशिया, मध्य अरब, चीन और भारत को जोडऩे वाला लगभग 6500 किलोमीटर का एक ऐसा बड़ा व्यापारिक मार्ग था, जिसे 'सिल्क रूट' कहा जाता था। लगभग 200 ईस्वी पूर्व से लेकर 1000 ईस्वी तक इस 'सिल्क रूट' या सिल्क मार्ग का इस्तेमाल रेशम के व्यापार के लिए होता रहा । भारत के परिप्रेक्ष्य में तो यह संकल्पना इससे भी कहीं प्राचीन है। हमारे वैदिक साहित्य में कहा गया है कि सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा अर्थात भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पहली वरेण्य संस्कृति है। हमारे उपनिषदों में उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम की परिकल्पना करते हुए समस्त विश्व को एक परिवार माना गया है। अब पूरी दुनिया 'वैश्विक ग्राम' की बात कर रही है जबकि वैश्वीकरण की पूर्वपीठिका बहुत पहले ही बन चुकी थी।

विचाराभिव्यक्ति मनुष्य की बहुत बड़ी शक्ति है। यदि ईश्वर ने मनुष्य को यह वाणी न दी होती तो सारा विश्व गूंगा होता। विश्व के तमाम देश परस्पर मैत्री संबंध बनाना चाहते हैं। वैज्ञानिक प्रगति और आधुनिक संचार माध्यमों ने इसे सहज संभव बना दिया है। आज हम विश्व के किसी भी कोने में बैठ कर, कुछ ही क्षणों में, किसी भी व्यक्ति के साथ संपर्क साध सकते हैं। आज ई-मेल, इंटरनेट, फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब, ई-पेपर, वेबसाइट, ब्लॉग, व्हाट्स-एप्प आदि की उपलब्धता ने भारतीय मनीषा की 'एकोहं बहुस्याम:' की अवधारणा को साकार कर दिया है। वैश्वीकरण जहां संचार क्रांति का जनक है वहीं इसने बाजारवाद को बढावा दिया है। आज विश्व बाजार में दुनिया के सभी देश अपने उत्पाद एवं सेवाएं दूसरे देशों को बेचकर लाभ कमाना चाहते हैं। लाभ कमाने की लालसा ने विभिन्न राष्ट्रों के मध्य व्यापारिक, राजनीतिक और कूटनीतिक प्रगाढता बढाने का मार्ग प्रशस्त किया है। इस प्रकार एक देश की वस्तुएं दूसरे देश को आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

वैश्वीकरण के कारण भारत में रोजगार के नए अवसर सृजित हुए हैं। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी, कॉल सेंटर, बीपीओ एवं ई-बिजनेस आदि के विस्तार के कारणवश तकनीकी क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्राप्त युवाओं के लिए वैश्विक स्तर पर रोजगार के अवसर बढे हैं। जहां अंग्रेजी बोलना, पढना और लिखना अनिवार्य मापदण्ड माना जाता है। सरकारी नौकरियों के लिए आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं में भी हिंदी के मुकाबले अंग्रेजी को अधिक महत्व दिया जाता है। ऐसे में अभिभावकों में अपने बच्चों को आरंभ से ही अंग्रेजी

माध्यम से पढाने की होड़ लगी रहती है जोकि स्वाभाविक है । देश के छोटे-छोटे कस्बों और गांवों में भी बड़ी संख्या में अमेरिकन अंग्रेजी सिखाने वाले संस्थान खुल गए हैं। कॉल सेंटरों में कार्यरत, फास्ट फूड संस्कति से प्रभावित युवा हिंदी भाषा को हेय की दृष्टि से देखते हैं। अभिभावक भी अपने बच्चों को अंग्रजी संस्कृति में ढलता देखकर एवं हिंदी माध्यम तथा हिंदी वातावरण से दूर रखकर अपनी शान समझते हैं। इसी गुलाम मानसिकता ने गांधी जी के सपनों को चकनाचूर किया है। गांधी जी खुद अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे, उनके साथ जुड़े मित्र और स्वतंत्रता सेनानी अंग्रेजी शिक्षा में पले-बढे थे, परंतु वे सभी हिंदी को देशप्रेम और आत्म-सम्मान से जोडक़र देखते थे।

वैश्विकरण के इस युग में हिंदी का विकास पिछले कुछ दशकों से तेजी से हो रहा है और भविष्य में भी इसके विकास का रथ निश्चय ही तेजी से आगे बढ़ेगा। आज जरूरत इस बात है कि सबसे पहले हम भारतीय अपनी भाषाओं के प्रयोग में आत्मगौरव का अनुभव करें । हमें स्वभाषा से उतना ही लगाव और प्यार होना चाहिए जितना कि हम अपने परिवार, धर्म और देश से करते हैं । ठीक वैसा ही जैसे कि गांधी जी का हिंदी के प्रति प्रेम , देशप्रेम और देश की गरिमा से जुड़ा हुआ था।

संदर्भ :

1. गांधी और हिंदी , संचयन एवं संपादन, राकेश पाण्डेय, नैशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
2. वैश्वीकरण एवं हिंदी का विकास, संचयन एवं संपादन, ओरियन्टटल बैंक ऑफ कॉमर्स, गुरूग्राम

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com